हिन्दी साहित्य के प्रमुख संत कवि और उनकी पदावली

डॉ. सुनीथा गोपाल नारायणकर
संगोल्लि रायन्ना फस्ट ग्रेड डिग्री कॉलेज बेलगावी

Email:sunithanarayankar@gmail.com

Ph No:9591861689, 7892919868

निर्गुन संतों की वाणी मानव कल्यान की दृष्टि से धार्मिक विचारों एवं अनुभूतियों का प्रकाशन करती हैं वैसे विकोचारों एवं अनुभूतियों को हिन्दी भाषा के उद्भव से पहले ही प्रचार में था। नवीं शताब्दी में बौद्ध सिद्धो ने जो रचनाएँ प्रस्तुत की उनमें वज्रायन तथा सहजयान संबंधी संप्रदायिक विचारों एवं साधनाओं के रचनाओं के साथ-साथ अन्य संप्रदाय के विचारों का प्रचार मिलता है। उसके बाद नाथपंथी तथा जैन मुनियों की जो बानियाँ मिलती गयी। बौद्धों ने भगवान को अपने रचनाओं में अपने वचनों में स्थान दिया वहीं नाथपंथियों ने भगवान की रूप का और भगवान की प्रतिष्ठा का प्रचार कीया। जब हिन्दी का विकास हुआ तब पूर्ववर्ति साहित्य का प्रभाव अनिवार्य था। इसलिए हिन्दी के आदिकाल में दोहे के सहारे जो रचनाएँ रचिगई उनमें अधिकांश रचनाऐं उपदेशपरक और नीतिपरक ही हैं। इन दोहों में उस समय की व्यथा, भगवान की प्रार्थना, मनुष्य के जीवन में होने वाले उतार चडावों को अपने पदों के सहारे सुधार कर लोगों को सही मार्ग दिखाने की कोशिश की गई है।

पद्रहवी शताब्दी के उत्तरार्ध से संतपरंपरा का अद्भव मानना चाहिए। इन संतों की बानियों में विचारस्वात्र्य का स्वर प्रमुख रहा वैष्णव धर्म के प्रधान आचार्य रामानुज, निंवार्क तथा मध्व विक्रम की बारहवीं एवं तेरहवीं शती में हुए। इनके माध्यम से भक्ति की एक वेगवती धारा का उद्भव हुआ। इन आचार्यों ने प्रस्थानत्रयी पर जो भाष्य प्रस्तुत किया, भक्ति के विकास में उनका प्रमुख योग है। गोरखनाथ से चमत्कार प्रधान योगमार्ग के प्रचार से भक्ति के मार्ग में कुछ बाधा आवश्य उपस्थित हुई, जिसकी ओर गोस्वामी तुलसीदास ने संकेत भी किया है:

गोरख जगायो जोग भगति भगायो लोग।

संन्तो का काव्य दर्श

साहित्य जीवन का सुसंकृत एवं साध्य रूप है। साहित्य का आधार मानव जीवन है। साहित्य जीवन की आलोचना एवं माणदण्ड है। साहित्य जन जीवन एवं समाज का उन्नायक है। साहित्य का जनता के प्रति महान उत्तरदायित्व है। साहित्य का प्रयोजन एवं जीवन का प्रयोजन अथवा उनके अंतिम लक्ष में परस्पर संबंध है।

साहित्य के प्रयोजन के विषय में मतभेद है।

१. आचार्य मम्मट के अनुसार यश, द्रव्य, व्यवहार ज्ञान, दु:खनाशादि काव्य रचना के मूल प्रयोग जन है।[१]
२. भामह के मत से काव्य धर्म से काव्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्रप्ति का साधन है।[२]
३. साहित्य दर्पणकर-भामह के प्रस्तुत कथन से पूर्णतया सहमत है।[३]
४. स्पिनगार्न (पाश्चात्य लेखक) के मत के अनुसार काव्य का उद्धेश्य शिक्षा एवं आनंद देने नहीं है, वरन उसका लक्ष है अभिव्यक्ति।[४]

५. ब्रेडले के अनुसार काव्य स्वयं अपना साध्य है, वह धर्म, संस्कृति औए शिक्षा आदि का साधन नहीं है।[५]

भारतीय एवं पाश्यात्य विद्ध्वानों के काव्यदर्शो एवं काव्य प्रयोजनों का अद्धयन करने पर ज्ञात होता है कि हिन्दी के संत कवियों में से किसी ने उपर्युक्त आदर्शों एवं प्रयोजनों में से एक को भी नहीं स्वीकार किया। संतों के काव्य से स्पष्ट है कि उन्हें लौकिक ऐश्वर्य एवं यश की लालसा नही थी। संतों का काव्य इस बात का प्रमाण है कि उन्होंने काव्य का कोई आदर्श नहीं ग्रहण किया। काव्य शास्त्र, छंद, पिगल आदि के नियमों का न उन्होंने अध्ययन किया था, न इन सब के प्रति कोई आस्था थी।

देश की राजनैाइक एवं ऐतिहासिक परिस्थितियों के फलस्वरूप देश का साहित्य प्रत्येक युग में नवीन रूप ग्रहण करता गया। सिद्ध-काव्य से लेकर संत काव्य तक हिन्दी साहित्य की धारा अनेक बार एक नवीन दिशा की ओर प्रवाहित हुई। हिन्दी कविता के आदि काल से संत काव्य तक कविता में दो विशेष प्रवृतियाँ उपलब्ध होती है। प्रथम प्रवृत्ति है धार्मिकता और द्वितीय चारण प्रवृत्ति है। अत: इस संपूर्ण काव्य का आदर्श धार्मिकता तथा वीरों एवं सामंतों की प्रशंसा और उसका कला विषयक आदर्श संस्कृत काव्य तथा संस्कृत काव्य शास्त्र है।

सिध्द युग सन ७६०-१३०० ई तक माना जाता है। इतिहास्कारों ने इसे हिन्दी काव्य का आदि युग माना है। इतिहास्कारों ने इसे हिन्दी काव्य का आदि-काल माना है। सिद्धों के काव्य को देखने से प्रकट होता है कि उनके विचार में काव्य शास्त्र विषयक कोई स्पष्ट चिचार नहीं था। इन कवियों की जो विचार थे आगे जाकर वहीं काव्य का रूप ग्रहण करता है। आमान्य भाषा में रहस्यानुभूति की अभिव्यक्ति, योग क्रियाओं का वर्णन एवं बाह्याडम्बरों की आलोचना करके धर्म सहज स्वरूप की अभिव्यक्ति ही इन सिद्धों का उद्देश्य था। इस में प्रमुख स्वयम्भू लोक-भाषा को काव्य के लिए विशेष उपयोगी मानते है। इस दृष्टि से कवि का भाषा विषयक यह काव्यादर्श महत्त्वपूर्ण है-

"अक्खार-वास-जलोह मणोहर। सुयल कार-छंद-मच्छेहर॥
दहि समास-पावाहा-वंकिय। सक्य-पुलिणा-लंकिय॥
देसी-भासा-उभय-तडुज्जल। कवि दुक्कर-घण-सद्द-सिलायल॥
अत्थ-बहल-कल्लोला णिद्विय। आसा-सय सम ऊह-परिट्ठय॥
राम-कहा सरि एंह सोहतीं।....[६]

अर्थात अक्षर जिस में मनोहर जोंक है, सुंदर अलंकार, छंद मछलियाँ हैं; दीर्घ समास बंकिम जल प्रवाह है। संस्कृत-प्रकृत के पुलिन वने हुए है; देशी भाषा के दो उज्ज्वल तट है; कवियों के हेतु दुष्कर घने शब्दों का सिलातल है। अनेक अर्थोंवाली कल्लोल हैं, सौकडों आशाओं के समान तरंगें उठती है; राम-कथा की सरिता इस प्रकार शोभित है।

उपर्युक्त उद्धरण से इस बात के पोषक हैं कि स्वयंभू संस्कृत महाकाव्यों के काव्यादर्श के पालक थे। स्वयंभू के अनुसार सुकवि वहीं है जो अपनी भाषामें काव्य रचना करे

"कइ आत्यि अणेअ-भेअ भरिया।
जे सुयण सहसहिं आयरिया॥[७]

सिद्ध कालिन कवियों में पुष्पदंत, अब्दुर्रहमान, बब्बर, अज्ञात कवि आदि ने जनता की दशा, गरीबी, अकाल आदि का भी वर्णन किया है। इससे ज्ञात होता है कि इन कवियों ने काव्य को जीवन के लिए प्रयोजनीय माना था। इस प्रकार सहज सरल शैली में आडम्बर रहित ढंग से स्वभावनाओं की देशी भाषा में अभिव्यक्ति ही सिद्ध-जैन कवियों का काव्यदर्श था। इसी प्रकार अनेक स्थलों पर कवियों की बानी, साखी के लेखक, ग्रंथो के रवयिता को सम्मानित व्यक्ति नहीं मना है। कवि के अनुसार ये स्वत: भ्रम में पडे हुए जीव हैं और भ्रम के प्रचारक है। इससे स्पष्ट है कि 'नाथ संप्रदाय के योगी' ने काव्य को उच्च कला नहीं माना है।

शब्दों के प्रयोग की कला एवं कौशल तथा माधुर्य तो विद्यापति की कविता में उपलब्द होता है।विद्यापति की काव्य रचना का आदर्श प्रेम एवं श्रृंगार है। इन्होंने अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने के लिए काव्य लिखा। विद्यापति का एक पद इस प्रकार है:-

"सकल पाप कला परिच्युति
सुकवि विद्यापतिकृत स्तुति
तोषिते शिवसिंह भूपति, [८]

शुद्ध साहित्यिक दृष्टि से विद्यापति ने अपनी पदावली की रचना की। वे काव्य को ईश्वर प्रतिभा मानते थे। इनके मतानुसार काव्य का उद्देश नागरों, रसिक या श्रीमानों का मनोरंजन है।[९] कबीर ग्रंथ रचना और काव्य लेखन को व्यर्थ परिश्रम समझते थे। कारण कि इसके द्वारा कभी कोई परम तत्त्व को प्रप्त करने वाला पंडित न बन सका। कबीर प्रकृत विषयों पर काव्य रचना के लिए लेखनी उठाने के बहुत विरुद्ध थे। वे कविता को जग जंजाल के गुण-गान का माध्यम बनाने के विरोधी थे। कबीर के शब्द में ही

"जग भव का गावना का गावै।
अनुभव गावै सो अनुरागी है॥"[१०]

कबीर के काव्यदर्श की दृष्टि से निम्नलिखित पंक्तियाँ पठनीय है-

"प्रेमभगति एसी कीजिए, मुखि अमृत बरिखौ चंद।
आपहि आप विचारिये तब केता होई आनंद रे॥
तुम्ह जिनी जनौ है, यह निज ब्रम्हा विचार।
केवल कहि समझाइया, आतम साधक सार रे।"[११]

संत कवि नानक साब्दी और साखी रचना को ब्रम्हा के प्रति वास्तविक प्रीति स्थापित करने में बाधक मानते है। इनके मत से शब्दों और साखियों में अभिव्यक्ति प्रेम वास्थविक नहीं है, वह केवल बाह्य दिखावा है।

शब्दन साखी नहीं प्रीति।
अमपुर जाहिं दुखाँ की रीति।"[१२]

संत कवि मलूकदास का काव्यदर्श कबीर और नानक की अपेक्षा अधिक स्पष्ट है। इनके मतानुसास यदि काव्य-रचना करना ही है तो उस ब्रहम की प्रशंसा एवं गुणगान करना चाहिए जिसके आधार पर संसार में अस्तित्व है-

"अदम कबित्त का जिसकी कबिताई करूँ
याद करूँ उसको जिन पैदा मुझे किया है।
गर्भ बास पाला आतस में नहिं जाला,
तिसको मैं बिसारूँ तो मैं किसकी आस जिया ॥"[१३]

इस प्रकार अनेक संत कवियों का साधक और उपदेशक रूप कवि के रूप से अधिक मधुर और स्वाभाविक है। सहज भावों की स्वाभाविक शैली में अभिव्यक्ति ही उनका काव्यदर्श था।

संदर्भ सूची:

१. काव्य यशसेकृत व्यवहारविदे शिवेतरज्ञतये। सव: परनिकृत्ये कांता सम्मित्तयूदेशयुजे।
२. धर्मार्थ कामोक्षपु वैचक्षण्यकलासु च-सिद्धांत और अध्ययन पृ सं ४५
३. सिद्धांत और अध्ययन पृ सं ४५
४. What is art-(Oxford) P no-128-29
५. What is art-(Oxford) P no-128-29
६. हिन्दी काव्य धारा पृ सं २६
७. हिन्दी काव्य धारा पृ सं २४
८. विद्यापति पदावली -पृ सं १३०
९. विद्यापति पदावली -पृ सं १३१
१०. कबीर ग्रन्थावली-पृ सं ८९
११. कबीर ग्रन्थावली-पृ सं ८९
१२. प्राण संगली पृ सं २४
१३. मलूक दास की बानी पृ सं- ३१